[2017] 6 एस. सी. आर. 711

बिहार राज्य और अन्य इत्यादि

बनाम

अनिल कुमार और अन्य इत्यादि

(2017 की दीवानी अपील सं. 4397-4400)

23 मार्च, 2017

[जगदीश सिंह खेहर, भारत के मुख्य न्यायाधीश,

डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़ और

संजय किशन कौल, न्यायमूर्तिगण]

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धाराएं 9, 23 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियमावली, 1995 - नियम 7 - केंद्र सरकार ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 23 के तहत निहित नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए 1995 की नियमावली बनाई, जिसमें नियम 7 के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अंतर्गत किए गए अपराधों के लिए अन्वेषण प्राधिकार पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी को नहीं दिया गया था - हालांकि, अपीलकर्ता-राज्य ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 9 के तहत स्वयं में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए एक अधिसूचना जारी की, जिसमें अन्वेषण प्रक्रिया को पुलिस उपाधीक्षक के पद से तीन रैंक नीचे के अधिकारियों, अर्थात् पुलिस निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक के पद धारण करने वाले अधिकारियों/पदाधिकारियों द्वारा किए जाने की अनुमति दी गई - अधिसूचना को इस तर्क के साथ चुनौती दी गई कि यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के प्रावधानों के अधिकारातीत होने के साथ-साथ 1995

की नियमावली के नियम 7 के प्रतिकूल भी थी - उच्च न्यायालय ने आक्षेपित अधिसूचना की वैधता को बरकरार रखा - अपील पर, अभिनिर्धारित किया गया: अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 9 ने गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति उन सभी अधिकारियों तक विस्तारित की जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उक्त जिम्मेदारियों को निभाने के हकदार होंगे - इसके अतिरिक्त, इसने राज्य सरकार को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत अपराधों के संबंध में अन्वेषण की शक्ति (गिरफ्तारी और अभियोजन की शक्ति के अतिरिक्त), "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को..." सौंपने के लिए अधिकृत किया, जिसे राज्य सरकार "आवश्यक" समझे - इस प्रकार, धारा 9 के तहत राज्य सरकार में निहित शक्ति स्पष्ट रूप से विस्तृत थी और इसका उद्देश्य गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के दायरे को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अधिकृत अधिकारियों/पदाधिकारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों तक बढ़ाना था - इसलिए, प्रत्यायोजन की शक्ति केवल पुलिस कर्मियों तक सीमित नहीं थी, बल्कि राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी तक विस्तृत थी, जो पुलिस विभाग से संबंधित हो भी सकता है और नहीं भी। उक्त शक्ति राज्य सरकार को एक अभिभावी खंड के माध्यम से दी गई थी और इसका प्रयोग दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों और स्वयं मूल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के बावजूद किया जा सकता था - आक्षेपित अधिसूचना बरकरार रखी गई - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली, 1995 - नियम 7 - की वैधता - अभिनिर्धारित: अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन से उत्पन्न होने वाले गंभीर और कठोर परिणामों को देखते हुए, केंद्र सरकार अपने नियम बनाने के प्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह अपेक्षा करने के लिए पूरी तरह से सक्षम और न्यायसंगत थी कि अन्वेषण प्रक्रिया पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न की जाए - केंद्र सरकार द्वारा प्रयोग की गई शक्ति उसमें निहित प्राधिकार

के ढांचे के भीतर थी - इस प्रकार, केंद्र सरकार द्वारा ऐसे प्राधिकार के प्रयोग को सक्षमता या वैधता के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती - नियम 7 को वैध माना गया।

प्रशासकीय विधि - मूल अधिनियम की धारा 23 के तहत केंद्र सरकार द्वारा बनाई गई 1995 की नियमावली जिसमें नियम 7 के तहत उक्त अधिनियम के अंतर्गत किए गए अपराधों के लिए अन्वेषण प्राधिकार निहित किया गया - मूल अधिनियम की धारा 9 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने 1995 की नियमावली के नियम 7 द्वारा किए गए उक्त प्रावधान में ढील देते हुए अधिसूचना जारी की - इसकी अनुज्ञेयता - अभिनिर्धारितः किसी नियम के तहत बनाया गया प्रावधान, अर्थात् नियम 7, मूल विधान के माध्यम से विस्तारित अधिकार, अर्थात् धारा 9 को नकार नहीं सकता - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 9 के तहत एक अभिभावी खंड के माध्यम से राज्य सरकार में निहित शक्ति को धारा 23 के तहत बनाए गए किसी भी नियम द्वारा निष्प्रभावी नहीं किया जा सकता है - इस प्रकार, अभिभावी खंड ने राज्य सरकार को मूल अधिनियम के प्रावधानों या उसके तहत बनाए गए नियमों के बावजूद उसे प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति दी।

अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. नियम बनाने के प्राधिकार, और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 ('अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम') के प्रावधानों के तहत परिकल्पित अपराधों से जुड़ी गंभीरता और उसमें व्यक्त विधायी मंशा के माध्यम से चित्रित नीति के साथ-साथ, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन से उत्पन्न होने वाले कठोर परिणामों को देखते हुए, केंद्र सरकार अपने नियम बनाने के प्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह अपेक्षा करने के लिए पूरी तरह से सक्षम और न्यायसंगत थी कि अन्वेषण प्रक्रिया पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न की जाए। केंद्र सरकार के पास

नियम बनाने का क्षेत्राधिकार था, और केंद्र सरकार ने अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग उसमें निहित प्राधिकार के ढांचे के भीतर किया था। इसलिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली, 1995 ('अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली') के नियम 7 की वैधता को बरकरार रखा जाता है। [कंडिका 12] [723-डी-ई]

2.1 विधायिका द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों से निपटने के लिए प्रदान की गई योजना को देखते हुए, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के परिचय और प्रारंभ के समय, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 ने गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति उन सभी अधिकारियों तक विस्तारित की थी जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उपरोक्त जिम्मेदारियों को निभाने के हकदार होंगे। और इस प्रकार, जब 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों को लागू किया गया, तो शुरुआत में, निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक के पद धारण करने वाले पुलिस कर्मियों सहित केवल पुलिस कर्मियों ने ही उपरोक्त शक्तियों का प्रयोग किया। ये सभी पुलिस कर्मी, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 द्वारा अन्वेषण प्रक्रिया का हिस्सा बनने के लिए अधिकृत थे। इसके अतिरिक्त, धारा 9 के तहत, एक राज्य सरकार को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों के संबंध में अन्वेषण की शक्ति (गिरफ्तारी और अभियोजन की शक्ति के अतिरिक्त) "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को..." सौंपने के लिए अधिकृत किया गया था, जिसे राज्य सरकार 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत "...किसी भी अपराध की रोकथाम और उससे निपटने के लिए..." "आवश्यक" समझे। इसलिए, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत राज्य सरकार में निहित शक्ति स्पष्ट रूप से विस्तृत थी, और इसका उद्देश्य गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के दायरे को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अधिकृत अधिकारियों/पदाधिकारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों

तक बढ़ाना था। धारा 9(1)(ख) के तहत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति ने राज्य सरकार को "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को..." शक्ति प्रदान करने की अनुमति दी। इस प्रकार, प्रत्यायोजन की शक्ति केवल पुलिस कर्मियों तक सीमित नहीं थी, बल्कि राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी तक विस्तृत थी, जो पुलिस विभाग से संबंधित हो भी सकता है और नहीं भी। [कंडिका 14] [724-डी-एच; 725-ए-बी]

2.2 धारा 9 में व्यक्त विधायी मंशा पर ध्यान देना भी आवश्यक है, जिसमें इसने राज्य सरकार को उपरोक्त विवेकाधीन प्राधिकार विस्तारित किया था। एक अभिभावी खंड के माध्यम से प्रदान किए गए दायरे को बढ़ाते हुए, राज्य सरकार को "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी..." को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति निहित करने का विवेक प्रदान किया गया था। अतः स्पष्ट रूप से, गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की ऐसी शक्तियों को प्रत्यायोजित करने का अधिकार, जो राज्य सरकार में निहित था, दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के बावजूद था। इतना ही नहीं, उपरोक्त शक्ति का प्रयोग स्वयं मूल 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के बावजूद भी किया जा सकता था। इसलिए यह स्पष्ट है कि धारा 9 का उद्देश्य वर्तमान प्रावधानों के अतिरिक्त गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के लिए एक प्रभावी तंत्र प्रदान करना था। यदि राज्य सरकार इसे 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक और समीचीन पाती है, तो उसके पास अतिरिक्त कर्मियों में गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति निहित करने का अधिकार और जिम्मेदारी थी। अलग ढंग से कहा जाए तो, यदि राज्य सरकार संतुष्ट थी कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के अनुरूप ऐसी शक्तियों से संपन्न अधिकारी 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त थे, तो राज्य सरकार उन लोगों तक शक्ति का विस्तार कर सकती थी जिनके लिए स्पष्ट रूप से ऐसा प्रावधान नहीं किया गया था। तदनुसार, 'अनुसूचित जाति और

अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों से निपटने के लिए अपर्याप्तता की स्थिति में, राज्य सरकार 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी..." को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति को आगे प्रत्यायोजित करने के लिए स्वतंत्र थी। [कंडिका 15] [725-सी-जी]

3. क्या राज्य सरकार अपने विवेकानुसार, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत स्वयं में निहित शक्ति को आगे बढ़ाते हुए, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 द्वारा किए गए प्रावधान में ढील दे सकती थी? इस मुद्दे का सही दृष्टिकोण इस प्रश्न से उभरेगा कि क्या किसी नियम के तहत बनाया गया प्रावधान, मूल विधान के माध्यम से विस्तारित अधिकार को नकार सकता है? इसका उत्तर नकारात्मक है। धारा 9(1)(ख) राज्य सरकार को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति को आगे प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान करती है। एक अभिभावी खंड के माध्यम से राज्य सरकार में निहित इस शक्ति को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 के तहत बनाए गए किसी भी नियम द्वारा निष्प्रभावी नहीं किया जा सकता है। अभिभावी खंड एक राज्य सरकार को — 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के बावजूद, और 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रावधानों के बावजूद — "...राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी..." को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति प्रत्यायोजित करने के लिए उसे प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति देगा। इस प्रकार, राज्य सरकार को विस्तारित अभिभावी खंड ने 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के साथ-साथ 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के तहत परिकल्पित स्थिति की उपेक्षा करने और अलग प्रावधान करने की शक्ति दी। यह मुद्दा कि क्या राज्य सरकार उपरोक्त नियम में ढील देने के लिए सक्षम थी, जिसमें यह अपेक्षा की गई थी कि अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न किया जाए, और इस प्रकार अन्वेषण की शक्ति को पुलिस

उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारियों तक विस्तारित करना, इसका उत्तर सकारात्मक है। इस प्रकार, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9(1)(ख) के तहत राज्य सरकार द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना को बरकरार रखा जाता है। [कंडिका 17, 18 और 19] [726-डी; 727-ए-एफ]

एच.एन. ऋषबुद और इंद्र सिंह बनाम दिल्ली राज्य **[1955) 1 एससीआर 1150;** *भारत संघ बनाम टी. नाथमुनि* **(2014) 16 धारा 285 : [2014) 12 एससीआर 297;** *एम.सी. सुलकुंटे बनाम मैसूर राज्य* **(1970) 3 एससीसी 513;** *मुनि लाल बनाम दिल्ली प्रशासन* **(1971) 2 एससीसी 48 : [1971) अनुपूरक एससीआर 276;** *हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल* **1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335 : [1990) 3 अनुपूरक एससीआर 259;** *ए.सी. शर्मा बनाम दिल्ली प्रशासन* **(1973) 1 एससीसी 726 : [1973] 3 एससीआर 477 – संदर्भित।**

<u>नज़ीर सन्दर्भ</u>

[1955] 1 एससीआर 1150	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
[2014] 12 एससीआर 297	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
(1970) 3 एससीसी 513	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
[1971] अनुपूरक एससीआर 276	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
[1990] 3 अनुपूरक एससीआर 259	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
[1973] 3 एससीआर 477	**संदर्भित**	**कंडिका 22**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2017 की दीवानी अपील सं. 4397-4400

दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 15490/2008, 7489/2006, 16407/2007 और 18736/2008 में पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 18.01.2011 और 20.01.2011 के निर्णय एवं आदेश से

साथ में

दीवानी अपील संख्या 4401/2017

उपस्थित पक्षों के लिए नागेंद्र राय, वरिष्ठ अधिवक्ता, चंदन कुमार (गोपाल सिंह के लिए), संतोष मिश्रा, आर. आर. दुबे, जसबीर बिधूड़ी (सुश्री मधु सिकरी के लिए), आलोक कुमार, अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय

जगदीश सिंह खेहर, **भारत के मुख्य न्यायाधीश** द्वारा सुनाया गया। 1. विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति प्रदान की गई।

2. विचार के लिए उत्पन्न होने वाला प्रश्न, पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 18/20.01.2011 से उभरता है। यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद 'एससीएसटी अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के प्रावधानों के तहत अन्वेषण प्रक्रिया की वैधता से संबंधित है।

3. इस मुद्दे की गंभीरता को प्रदर्शित करने के लिए, विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 7317/2017 (इस न्यायालय के समक्ष एक अभियुक्त द्वारा दायर) से उत्पन्न दीवानी अपील में विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 3(2) की ओर आकर्षित किया, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड.-

(1) ....

(2) जो कोई, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न हो,-

(i) मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, इस आशय से कि उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाए जो तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार मृत्युदंड से दंडनीय हो, या यह जानते हुए कि यह संभाव्य है कि वह ऐसा करेगा, तो वह आजीवन कारावास और जुर्माने से

दंडित किया जाएगा; और यदि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी निर्दोष सदस्य को ऐसे मिथ्या या गढ़े हुए साक्ष्य के परिणामस्वरूप दोषसिद्ध किया जाता है और मृत्युदंड दिया जाता है, तो वह व्यक्ति जो ऐसा मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, मृत्युदंड से दंडित किया जाएगा;

(ii) मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, इस आशय से कि उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाए जो मृत्युदंड से दंडनीय नहीं है, किंतु सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय है, तो वह ऐसी अवधि के कारावास से दंडनीय होगा जो छह महीने से कम नहीं होगी, किंतु जो सात वर्ष या उससे अधिक तक की हो सकती है, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा;

(iii) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा इस आशय से कुचेष्टा करता है या यह जानते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की किसी संपत्ति को नुकसान पहुँचाएगा, तो वह ऐसी अवधि के कारावास से दंडनीय होगा जो छह महीने से कम नहीं होगी, किंतु जो सात वर्ष तक की हो सकती है, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा;

(iv) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा इस आशय से कुचेष्टा करता है या यह जानते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उसके द्वारा किसी ऐसे भवन का विनाश कारित करेगा जो साधारणतया अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा उपासना स्थल के रूप में या मानव निवास के स्थान के रूप में या संपत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, तो वह आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध यह

जानते हुए करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, तो वह आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडित किया जाएगा;

(v क) अनुसूची में विनिर्दिष्ट कोई अपराध किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध यह जानते हुए करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, तो वह ऐसे दंड से दंडनीय होगा जैसा कि उन अपराधों के लिए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत विनिर्दिष्ट है और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा;

(vi) यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि इस अध्याय के तहत कोई अपराध किया गया है, अपराधी को कानूनी दंड से बचाने के इरादे से उस अपराध के किए जाने के किसी भी साक्ष्य को गायब कर देता है, या उस इरादे से अपराध के संबंध में कोई ऐसी सूचना देता है जिसे वह मिथ्या जानता है या विश्वास करता है, तो वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा; या

(vii) लोक सेवक होते हुए, इस धारा के अधीन कोई अपराध करता है, तो उसे कारावास से दण्डित किया जाएगा, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम नहीं होगी, किन्तु जो उस अपराध के लिए निर्धारित दण्ड तक हो सकती है।"

(जोर हमारा है)

तुलना के लिए, हमारा ध्यान भारतीय दंड संहिता की धारा 201 की ओर भी आकर्षित किया गया, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"201. अपराध के साक्ष्य का विलोपन, या अपराधी को बचाने के लिए मिथ्या सूचना देना-जो कोई यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि कोई अपराध किया गया है, उस अपराध के किए जाने के किसी साक्ष्य का विलोपन इस आशय से करेगा कि अपराधी को कानूनी दंड से बचाया जा सके, या उस आशय से उस अपराध

के संबंध में कोई ऐसी सूचना देगा जिसके बारे में वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है;

यदि मृत्युदंड योग्य अपराध है- यदि वह अपराध जिसके बारे में वह जानता है या विश्वास करता है कि वह किया गया है, मृत्युदंड से दंडनीय है, तो उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, और वह जुर्माने से भी दंडनीय होगा;

यदि आजीवन कारावास से दंडनीय हो - और यदि अपराध आजीवन कारावास से दंडनीय हो, या कारावास से, जो दस वर्ष तक का हो सकता है, तो उसे किसी भी प्रकार के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकती है, दंडित किया जाएगा। और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा;

यदि दस वर्ष से कम कारावास से दंडनीय हो - और यदि अपराध किसी भी अवधि के कारावास से, जो दस वर्ष तक का न हो, दंडनीय हो, तो उसे अपराध के लिए प्रदान की गई अवधि के कारावास से, जिसकी अवधि अपराध के लिए प्रदान की गई कारावास की सबसे लंबी अवधि के एक-चौथाई तक हो सकती है, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

(जोर हमारा है)

यह तर्क दिया गया था कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत परिणाम भारतीय दंड संहिता के तहत परिकल्पित परिणामों की तुलना में कहीं अधिक गंभीर और कठोर हैं। इसलिए, अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता का यह पुरजोर तर्क था कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों की, जहाँ तक अन्वेषण प्रक्रिया का संबंध है, कड़ाई से (और उदारतापूर्वक नहीं) व्याख्या की जानी चाहिए। और उपरोक्त प्रयोजन के लिए, यह प्रस्तुत किया गया था कि केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप, अन्वेषण प्रक्रिया को यथासंभव उच्चतम प्राधिकारी के हाथों में रखा जाना

आवश्यक था। यह बताया गया कि इसके विपरीत कोई भी निर्धारण विधायी मंशा के साथ-साथ 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन के गंभीर और कठोर परिणामों के प्रतिकूल होगा।

4. इससे पहले कि हम वर्तमान विवाद से निपटने का प्रयास करें, आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। उच्च न्यायालय का अंतिम निर्धारण निम्नलिखित शब्दों में दिया गया था:

> "उपरोक्त कारणों से, हम यह घोषित करते हैं कि दिनांक 3 जून, 2002 की आक्षेपित अधिसूचना, 1989 के अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के अधिकारातीत नहीं है। यह आगे घोषित किया जाता है कि दिनांक 3 जून, 2002 की आक्षेपित अधिसूचना बिहार राज्य के आधिकारिक राजपत्र में इसके प्रकाशन की तिथि से, अर्थात् 9 अगस्त, 2008 से प्रभावी हो गई है। आक्षेपित अधिसूचना के तहत सशक्त किए गए किसी पुलिस अधिकारी द्वारा, भले ही वह पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे का हो, 9 अगस्त, 2008 को या उसके बाद किया गया अन्वेषण और परिणामी अभियोजन वैध होगा, भले ही संबंधित अपराध 9 अगस्त, 2008 से पहले किया गया हो। यह आगे घोषित किया जाता है कि नियमावली की तिथि, अर्थात् 31 मार्च, 1995 के बाद और 9 अगस्त, 2008 से पहले पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण और परिणामी अभियोजन, 9 अगस्त, 2008 को प्रकाशित 3 जून, 2002 की आक्षेपित अधिसूचना द्वारा मान्य नहीं होगा।"

5. आक्षेपित आदेश (ऊपर उद्धृत) में निहित निर्देशों के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 के तहत केंद्र सरकार को नियम बनाने का अधिकार प्राप्त है। उपरोक्त प्रावधान को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"23. नियम बनाने की शक्ति-(1) केंद्र सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकती है।

(2) इस अधिनियम के तहत बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात यथाशीघ्र, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिनों की अवधि के लिए रखा जाएगा, जो एक सत्र में या दो या अधिक निरंतर सत्रों में पूरी हो सकती है, और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त निरंतर सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व, दोनों सदन नियम में कोई संशोधन करने के लिए सहमत हो जाते हैं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाते हैं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, तो तत्पश्चात वह नियम, यथास्थिति, केवल ऐसे संशोधित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा; तथापि, यह कि ऐसा कोई भी संशोधन या शून्यकरण उस नियम के तहत पहले की गई किसी भी बात की वैधता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना होगा।"

(जोर हमारा है)

6. केंद्र सरकार ने वास्तव में धारा 23 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियमावली, 1995 (इसके बाद इसे 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) बनाई। पूर्वोक्त नियमावली के नियम 7 ने स्पष्ट रूप से 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों के लिए अन्वेषण प्राधिकार, पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी को नहीं, बल्कि उसके समकक्ष या उससे ऊपर के अधिकारी में निहित किया। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' का नियम 7 नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"7. अन्वेषण अधिकारी - (1) अधिनियम के तहत किए गए अपराध का अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं किया जाएगा।

अन्वेषण अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार/ पुलिस महानिदेशक/ पुलिस अधीक्षक द्वारा उसके पिछले अनुभव, क्षमता और मामले के निहितार्थों को समझने तथा कम से कम संभव समय के भीतर सही दिशा में अन्वेषण करने की न्याय-भावना को ध्यान में रखते हुए की जाएगी।

(2) उप-नियम (1) के तहत नियुक्त अन्वेषण अधिकारी शीर्ष प्राथमिकता पर अन्वेषण पूरा करेगा, पुलिस अधीक्षक को प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा, जो बदले में तुरंत उस प्रतिवेदन को राज्य सरकार के पुलिस महानिदेशक या पुलिस आयुक्त को अग्रेषित करेगा, और संबंधित पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी साठ दिनों की अवधि के भीतर (इस अवधि में अन्वेषण और आरोप-पत्र दाखिल करना शामिल है) विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में आरोप-पत्र दाखिल करेगा।

(3)

(2क) उप-नियम (2) के अनुसार अन्वेषण या आरोप-पत्र दाखिल करने में यदि कोई देरी होती है, तो उसे अन्वेषण अधिकारी द्वारा लिखित रूप में स्पष्ट किया जाएगा।

(3) राज्य सरकार या संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन के सचिव, गृह विभाग और सचिव, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कल्याण विभाग (विभाग का नाम अलग-अलग राज्यों में भिन्न हो सकता है), अभियोजन निदेशक, अभियोजन के भारसाधक अधिकारी और संबंधित राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के प्रभारी पुलिस महानिदेशक या पुलिस आयुक्त प्रत्येक तिमाही के अंत तक अन्वेषण अधिकारी द्वारा किए गए सभी अन्वेषणों की स्थिति की समीक्षा करेंगे।"

(जोर हमारा है)

नियम 7 के अवलोकन से पता चलता है कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों के लिए अन्वेषण प्राधिकार स्पष्ट रूप से पुलिस

उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी को नहीं, बल्कि उसके समकक्ष या उससे ऊपर के अधिकारी में निहित किया गया था।

7. वर्तमान मामलों में विवाद बिहार राज्य द्वारा जारी एक अधिसूचना से उत्पन्न हुआ। वर्तमान अधिसूचना राज्य सरकार द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत उसमें निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई थी। पूर्वोक्त धारा 9 को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है:

"9. शक्तियों का प्रदत्तीकरण - (1) संहिता या इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान में निहित किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार, यदि वह ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे, तो -

(क) इस अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध की रोकथाम और उससे निपटने के लिए, या

(ख) इस अधिनियम के अंतर्गत किसी मामले, वर्ग या मामलों के समूह के लिए, किसी भी

जिले या उसके किसी भाग में, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को, ऐसे जिले या उसके किसी भाग में संहिता के अंतर्गत किसी पुलिस अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ, या, जैसा भी मामला हो, ऐसे मामले या वर्ग या मामलों के समूह के लिए, और विशेष रूप से, किसी विशेष न्यायालय के समक्ष व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियाँ, प्रदान कर सकती है।

(2) सभी पुलिस अधिकारी और सरकार के अन्य सभी अधिकारी इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम, योजना या आदेश के प्रावधानों के क्रियान्वयन में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी की सहायता करेंगे।

(3) संहिता के प्रावधान, जहाँ तक हो सके, उपधारा (1) के अधीन किसी अधिकारी द्वारा शक्तियों के प्रयोग पर लागू होंगे।

(जोर हमारा है)

8. उपरोक्त अधिसूचना 03.06.2002 को जारी की गई थी। यह अधिसूचना राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत अपीलों के अभिलेख में अनुलग्नक पीआई के रूप में उपलब्ध है। अधिसूचना (दिनांक 03.06.2002), 09.08.2008 को प्रकाशित हुई थी। यह इस प्रकार है:

"सं. - 3/वाईए-80-26/2002-एच(पी)-6104- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (सं. 33, 1989) की धारा 9(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और इस अधिनियम के अंतर्गत दर्ज मामलों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार पुलिस निरीक्षक, पुलिस उप-निरीक्षक और सहायक पुलिस उप-निरीक्षक रैंक के सभी अधिकारियों को बिहार राज्य में इस अधिनियम के अंतर्गत दर्ज मामलों की जाँच करने के लिए 31 मार्च 1995 से, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 के लागू होने की तिथि से, प्राधिकृत करती है।"

(जोर हमारा है)

ऊपर उद्धृत अधिसूचना के अवलोकन से यह पता चलता है कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' (केंद्र सरकार द्वारा निर्मित) का नियम 7, जिसमें 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में सभी अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न किए जाने की आवश्यकता थी, उसे व्यावहारिक रूप से समाप्त कर दिया गया था। इसके विपरीत, और स्पष्ट विसंगति के रूप में, अधिसूचना ने ('अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत) अन्वेषण प्रक्रिया को पुलिस उपाधीक्षक के पद से तीन पद नीचे के अधिकारियों, अर्थात्

निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक के पद धारण करने वाले अधिकारियों/पदाधिकारियों के माध्यम से किए जाने की अनुमति दी।

9. अपीलकर्ता-अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत अपील में, आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के पहले भाग को चुनौती दी गई है। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क था कि दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के अधिकारातीत थी, और उसके तहत बनाए गए नियम 7 के भी विपरीत थी - और इस प्रकार, यह 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' का भी उल्लंघन थी।

10. यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना को उच्च न्यायालय द्वारा "... 31 मार्च 1995 से प्रभावी ..." मानकर दिए गए पूर्वव्यापी प्रभाव को रद्द किए जाने को, किसी भी पक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से चुनौती नहीं दी गई थी।

11. संबद्ध अपीलों में, बिहार राज्य द्वारा आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के दूसरे भाग को चुनौती दी गई है। यह उल्लेख करना उचित होगा कि उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्षों में यह भी दर्ज किया कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रकाशन (31.03.1995 को) के बाद और दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि से पहले (अर्थात् 09.08.2008 से पहले), पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किए गए अन्वेषणों को वैध "नहीं" माना जाएगा, और ऐसी अन्वेषण प्रक्रियाओं (जो पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा की गई थीं) को आगे बढ़ाते हुए किए गए परिणामी अभियोजन शून्य होंगे।

12. हमारे विचार के लिए जो पहला प्रश्न उत्पन्न होता है, वह 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 की वैधता के संदर्भ में है, जिसे केंद्र सरकार द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 के तहत उसमें निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी किया गया था। नियम बनाने के प्राधिकार, और

'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के तहत परिकल्पित अपराधों से जुड़ी गंभीरता, और उसमें व्यक्त विधायी मंशा के माध्यम से चित्रित नीति, साथ ही 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन से उत्पन्न होने वाले गंभीर और कठोर परिणामों पर अपने विचारपूर्ण विचार देने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि अपने नियम बनाने के अधिकार के प्रयोग में, केंद्र सरकार पूरी तरह से सक्षम और न्यायसंगत थी कि अन्वेषण प्रक्रिया पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न की जाए। केंद्र सरकार के पास नियम बनाने का अधिकार क्षेत्र था, और केंद्र सरकार ने अपने निहित प्राधिकार के ढांचे के भीतर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया था। इसलिए हम इसके द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 की वैधता की पुष्टि करते हैं।

13. विचार के लिए जो अगला मुद्दा उठता है, वह यह है कि क्या बिहार राज्य द्वारा दिनांक 03.06.2002 को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत राज्य सरकार में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए जारी की गई अधिसूचना को, राज्य सरकार को प्रत्यायोजित शक्ति के उल्लंघन में या उससे अधिक माना जा सकता है। अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क था कि धारा 9 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पहले से प्रदान की गई शक्तियों के अतिरिक्त, गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियों ('अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले आरोपित व्यक्तियों के विरुद्ध) के विस्तार की संभावना पर विचार करती है। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया था कि राज्य सरकार के लिए यह विकल्प खुला नहीं था कि वह ('अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत) अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की ऐसी शक्तियाँ उन पुलिस अधिकारियों को प्रदान करे जो 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के तहत निर्धारित और प्रदान किए गए पुलिस अधिकारी के पद से नीचे के हों। यह तर्क

दिया गया था कि उपरोक्त नियमों के नियम 7 के तहत, गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियों का प्रयोग अनिवार्य रूप से पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए यह तर्क दिया गया कि अन्वेषण शक्ति का विस्तार, स्पष्ट रूप से निर्धारित पद से नीचे के पुलिस अधिकारी/पदाधिकारी तक करना स्वीकार्य नहीं था। अपने उपरोक्त दावे के समर्थन में, अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 की उप-धारा (2) की ओर भी आकर्षित किया, और उसके आधार पर तर्क दिया कि धारा 9 की उप-धारा (2) में विधायिका द्वारा अपनाई गई भाषा की स्पष्ट और सरल व्याख्या से यह उभर कर आएगा कि अधिकार का अतिरिक्त प्रदान (गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के संदर्भ में), केवल पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य अधिकारी तक ही विस्तारित किया जा सकता है।

14. अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता के तर्क को समझने के लिए, हमारे लिए उस योजना को ध्यान में रखना अनिवार्य है, जो विधायिका द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों से निपटने के लिए प्रदान की गई थी। हमारे सुविचारित मत में, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के परिचय और प्रारंभ के समय, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 ने गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति को उन सभी अधिकारियों तक विस्तारित किया था जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पूर्वोक्त जिम्मेदारियों को निभाने के हकदार थे। और इस प्रकार, यह समझा जाना आवश्यक है कि जब 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों को शुरू में लागू किया गया, तब केवल पुलिस कर्मियों ने ही, जिनमें निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक के पद धारण करने वाले भी शामिल थे, उपरोक्त शक्तियों का प्रयोग किया था। ये सभी पुलिस कर्मी, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 द्वारा अन्वेषण प्रक्रिया का हिस्सा

बनने के लिए अधिकृत थे। इसके अतिरिक्त, पूर्वोक्त धारा 9 के तहत, एक राज्य सरकार को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों के संबंध में, अन्वेषण की शक्ति (गिरफ्तारी और अभियोजन की शक्ति के अतिरिक्त) "... राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को ..." प्रत्यायोजित करने के लिए अधिकृत किया गया था, जिसे राज्य सरकार 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत "किसी भी अपराध की रोकथाम और उससे निपटने के लिए" "आवश्यक" समझे। इसलिए 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत राज्य सरकार में निहित शक्ति स्पष्ट रूप से विस्तृत थी, और स्पष्ट रूप से इसका उद्देश्य गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के क्षेत्र को दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अधिकृत अधिकारियों/पदाधिकारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों तक बढ़ाना था। धारा 9(1)(ख) के तहत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति ने राज्य सरकार को शक्ति "... राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को ..." प्रदान करने की अनुमति दी। प्रत्यायोजन की शक्ति केवल पुलिस कर्मियों तक सीमित नहीं थी, बल्कि राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी तक विस्तारित थी, जो पुलिस विभाग से संबंधित हो भी सकता था और नहीं भी। इसलिए हमारे लिए अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 की उप-धारा (2) पर आधारित तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है।

15. धारा 9 में व्यक्त विधायी मंशा पर ध्यान देना भी आवश्यक है, जिसमें इसने राज्य सरकार को उपरोक्त विवेकाधीन अधिकार प्रदान किया था। राज्य सरकार को एक *अभिभावी* खंड के माध्यम से निर्धारित क्षेत्र को बढ़ाकर "... राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को ..." गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति निहित करने का विवेक प्रदान किया गया था। अतः स्पष्ट रूप से, गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की ऐसी शक्तियों को प्रत्यायोजित करने का अधिकार, जो राज्य सरकार में निहित था, दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के होते हुए भी (इररेस्पेक्टिव ऑफ) था। इतना ही नहीं, उपरोक्त शक्ति

का प्रयोग मूल 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के होते हुए भी किया जा सकता था। इसलिए यह स्पष्ट है कि धारा 9 का उद्देश्य वर्तमान प्रावधानों के अतिरिक्त गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के लिए एक प्रभावी तंत्र बनाना और उसके लिए उपबंध करना था। यदि राज्य सरकार 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए इसे आवश्यक और समीचीन पाती, तो उसके पास अतिरिक्त कर्मियों में गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति निहित करने का अधिकार और उत्तरदायित्व था। दूसरे शब्दों में, यदि राज्य सरकार संतुष्ट थी कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के अनुरूप ऐसी शक्तियों से संपन्न अधिकारी 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त थे, तो राज्य सरकार उन लोगों तक शक्ति का विस्तार कर सकती थी जिनके लिए स्पष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया था। तदनुसार, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों से निपटने में अपर्याप्तता की स्थिति में, राज्य सरकार 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति को "... राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को ..." आगे प्रत्यायोजित करने के लिए स्वतंत्र थी।

16. अब हम 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 को बनाते समय केंद्र सरकार की मंशा को समझने और उसका विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे। यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के तहत परिकल्पित अपराधों के कठोर परिणामों के कारण, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के अंतर्गत केंद्र सरकार ने 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अपराधों के लिए अन्वेषण शक्ति को पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारियों को नहीं, बल्कि उसके समकक्ष या उससे ऊपर के अधिकारियों में निहित करना समीचीन समझा। केंद्र सरकार के इस निर्धारण का

अखिल भारतीय प्रभाव था, और यह किसी विशिष्ट राज्य तक सीमित नहीं था। इसलिए, जब 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रावधान तैयार किए गए, तो यह कल्पना करना आवश्यक है कि वे केंद्र सरकार द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर उनके कार्यान्वयन के लिए बनाए गए थे। केंद्र सरकार ने 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के किसी भी उल्लंघन के कठोर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा अन्वेषण न किए जाने की आवश्यकता को समीचीन समझा। केंद्र सरकार द्वारा प्राधिकार के इस प्रयोग को सक्षमता या वैधता के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती (जैसा कि ऊपर पहले ही निष्कर्ष निकाला जा चुका है)। इसलिए, हम 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत किए गए अपराधों के संदर्भ में, पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी को अन्वेषण शक्ति न देने के केंद्र सरकार के निर्धारण में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं। इसीलिए, हम 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 की वैधता के प्रति अपनी पुष्टि व्यक्त करते हैं और उसे दोहराते हैं।

17. प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकार, अपने विवेक से, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत उसमें निहित शक्ति को आगे बढ़ाते हुए, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 द्वारा किए गए प्रावधान को शिथिल कर सकती है।

18. यह रेखांकित करना अनिवार्य है कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 के तहत केंद्र सरकार में निहित नियम बनाने की शक्ति के राष्ट्रीय स्वरूप के विपरीत, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत परिकल्पित प्रत्यायोजित शक्ति राज्य-विशिष्ट है। किसी राज्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति संबंधित राज्य में प्रचलित परिस्थितियों को ध्यान में रखती है। इसलिए, (एक राज्य सरकार में निहित) इस प्रत्यायोजित शक्ति के प्रयोग की वैधता और विधिमान्यता का

निर्धारण किसी व्यक्तिगत राज्य में प्रचलित विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत निहित शक्ति के प्रयोग में, प्रत्येक व्यक्तिगत राज्य सरकार को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के तहत परिकल्पित अधिकारियों के अलावा अन्य अधिकारियों तक गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियों का विस्तार करने का अधिकार दिया गया था। गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति के दायरे की एक तर्कसंगत और वैध समझ के लिए अनिवार्य रूप से 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' और 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने की आवश्यकता होगी। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रख्यापन के बाद, निस्संदेह, केंद्र सरकार ने पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी के हाथों अन्वेषण न किए जाने का प्रावधान किया। लेकिन, विचाराधीन मुद्दे का सही दृष्टिकोण इस प्रश्न से उभरेगा कि क्या किसी नियम के तहत किया गया प्रावधान मूल विधान के माध्यम से विस्तारित अधिकार को नकार सकता है? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक होना चाहिए। यह सरल तर्क बहस किए जा रहे मुद्दे का उत्तर स्पष्ट करता है। हमारे सुविचारित मत में, धारा 9(1)(ख) राज्य सरकार को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति को आगे प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान करती है। एक *अभिभावी खंड* के माध्यम से राज्य सरकार में निहित इस शक्ति को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 के तहत बनाए गए किसी भी नियम द्वारा निष्प्रभावी नहीं किया जा सकता है। *अभिभावी खंड* एक राज्य सरकार को उस पर प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति देगा - 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के प्रावधानों के होते हुए भी, और 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के प्रावधानों के होते हुए भी, ताकि वह "... राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को ..." गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति प्रत्यायोजित कर सके। हमारा मत है कि

अभिभावी खंड ने राज्य सरकार को 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के साथ-साथ 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के तहत परिकल्पित स्थिति की अनदेखी करने और उससे अलग प्रावधान करने की शक्ति प्रदान की है। यह प्रश्न कि क्या राज्य सरकार उपरोक्त नियम को शिथिल करने के लिए सक्षम थी, जिसमें यह आवश्यक था कि अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा न किया जाए, और इस प्रकार, अन्वेषण की शक्ति का विस्तार पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारियों तक किया जाए, इसका उत्तर सकारात्मक होना चाहिए।

19. उपरोक्त निष्कर्ष निकालने के पश्चात, हम न केवल 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति नियमावली' के नियम 7 को, बल्कि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9(1)(ख) के तहत राज्य सरकार में निहित शक्ति के प्रयोग में जारी दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना को भी बरकरार रखने के लिए संतुष्ट हैं। तदनुसार, हम अपीलकर्ता-अभियुक्त की ओर से दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना को दी गई चुनौती में कोई गुण नहीं पाते हैं।

20. हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष में भी गुण पाते हैं कि दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना के कार्यान्वयन की प्रभावी तिथि, उपरोक्त अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि (अर्थात् 09.08.2008) होगी। प्रथम, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज उपरोक्त निष्कर्ष को कोई चुनौती नहीं दी गई है। और द्वितीय, शक्ति के इस तत्काल प्रयोग का भूतलक्षी प्रभाव नहीं हो सकता, क्योंकि 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 23 केंद्र सरकार को अपनी नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग पूर्वव्यापी प्रभाव से करने का प्राधिकार नहीं देती है।

21. पूर्वगामी कंडिकाओं में दर्ज निष्कर्षों के साथ, हमने अपीलकर्ता-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार किया है।

22. अब हम बिहार राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाई गई चुनौती पर विचार करेंगे। जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया दूसरा निष्कर्ष यह था कि 31.03.1995 के बाद और 09.08.2008 से पहले पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारियों द्वारा किए गए अन्वेषण दूषित माने जाएंगे। पूर्वोक्त निष्कर्ष पर प्रहार करने के लिए, विद्वान अधिवक्ता ने सबसे पहले हमारा ध्यान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 की ओर आकर्षित किया। उसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"465. त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण निष्कर्ष या दंडादेश का प्रतिवर्तनीय होना -(1) इसमें इसके पूर्व अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश, अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा, परिवाद, समन, वारंट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या विचारण के पूर्व या उसके दौरान अन्य कार्यवाहियों में अथवा इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाहियों में किसी भूल, लोप या अनियमितता के कारण, या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में किसी भूल या अनियमितता के कारण तब तक प्रतिवर्तित या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, उसके कारण वास्तव में न्याय की विफलता नहीं हुई है।

(2) यह अवधारित करने में कि क्या इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही में किसी भूल, लोप या अनियमितता से, या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में किसी भूल या अनियमितता से न्याय की विफलता हुई है, न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान देगा कि क्या वह आपत्ति कार्यवाही के किसी पूर्वतर प्रक्रम पर उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी।"

(जोर हमारा है)

उपरोक्त प्रावधान के आधार पर, यह तर्क दिया गया कि अन्वेषण के संदर्भ में किसी लोप या अनियमितता का प्रभाव स्वयं अभियोजन को नकारने का नहीं होगा, जब तक कि यह आगे न दिखाया जाए कि इसके कारण वास्तव में न्याय की विफलता हुई है। अपने उपरोक्त तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने एच.एन. ऋषबुद और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य, (1955) 1 एस.सी.आर. 1150 का अवलंबन लिया। उपरोक्त निर्णय में विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न हुए थे, उन्हें निम्नलिखित तरीके से व्यक्त किया गया था:

> "हमारे समक्ष प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के लिए दो बिंदु उठते हैं। (1) क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 का यह प्रावधान लागू होता है कि इसमें निर्दिष्ट अपराधों का अन्वेषण दंडाधिकारी के विशिष्ट आदेश, निदेशात्मक या अनिवार्य आदेश के बिना, पुलिस उपाधीक्षक से निम्न पद के किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा नहीं किया जाएगा।
>
> (2) क्या इस प्रावधान के उल्लंघन में किए गए अन्वेषण के पश्चात होने वाला विचारण अवैध है।"

उपरोक्त निर्णय (तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा दिए गए) में निकाले गए निष्कर्ष (निष्कर्षों) की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने के लिए, हमारा ध्यान इस निर्णय में दर्ज निम्नलिखित स्थिति की ओर विशेष रूप से दिलाया गया:

> "तब इस प्रश्न पर विचार किए जाने की आवश्यकता है कि क्या और किस सीमा तक वह विचारण दूषित होता है जो ऐसे अन्वेषण के पश्चात होता है। अब, विचारण प्रसंज्ञान के पश्चात होता है और प्रसंज्ञान से पहले अन्वेषण होता है। 'संज्ञेय मामलों' के संबंध में यह निस्संदेह संहिता की मूल योजना है। किंतु यह आवश्यक रूप से अनुगामी नहीं है कि एक अवैध अन्वेषण उसके आधार पर होने वाले प्रसंज्ञान या विचारण को शून्य कर देता है। यहाँ हमारा सरोकार प्रसंज्ञान या विचारण के संबंध में न्यायालय की सक्षमता या प्रक्रिया को विनियमित करने वाले किसी आज्ञापक उपबंध

के उल्लंघन के प्रभाव से नहीं है। केवल ऐसे उल्लंघन के संदर्भ में ही यह प्रश्न उठता है कि क्या यह कार्यवाहियों को दूषित करने वाली अवैधता है या केवल एक अनियमितता है। अन्वेषण में कोई त्रुटि या अवैधता, चाहे वह कितनी ही गंभीर क्यों न हो, प्रसंज्ञान या विचारण से संबंधित सक्षमता या प्रक्रिया पर कोई सीधा प्रभाव नहीं डालती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में अन्वेषण के परिणामस्वरूप प्राप्त 'प्रतिवेदन' को उस सामग्री के रूप में प्रावधानित किया गया है जिस पर प्रसंज्ञान लिया जाता है। किंतु यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि एक वैध और विधिक 'प्रतिवेदन' प्रसंज्ञान लेने के लिए न्यायालय की अधिकारिता का आधार है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 उन धाराओं के समूह में से एक है जिसका शीर्षक "कार्यवाहियां शुरू करने के लिए आवश्यक शर्तें" है। इस धारा की भाषा उसी शीर्षक के तहत समूह की अन्य धाराओं, अर्थात् धारा 193 और 195 से 199 की भाषा के बिल्कुल विपरीत है। ये बाद वाली धाराएं न्यायालय की सक्षमता को विनियमित करती हैं और उनके अनुपालन के बिना कुछ मामलों में इसकी अधिकारिता को वर्जित करती हैं। लेकिन धारा 190 ऐसा नहीं करती है। हालांकि एक अर्थ में, धारा 190(1) के खंड (क), (ख) और (ग) प्रसंज्ञान लेने के लिए आवश्यक शर्तें हैं, फिर भी यह कहना संभव नहीं है कि एक अवैध 'प्रतिवेदन' पर प्रसंज्ञान लेना निषिद्ध है और इसलिए वह शून्य है। ऐसा अवैध 'प्रतिवेदन' अभी भी धारा 190(1) के खंड (क) या (ख) के अंतर्गत आ सकता है (चाहे वह इनमें से कोई एक हो या दूसरा, हमें इस पर विचार करने के लिए रुकने की आवश्यकता नहीं है) और किसी भी स्थिति में इस प्रकार लिया गया प्रसंज्ञान केवल विचारण से पूर्व की कार्यवाही में त्रुटि की प्रकृति का है। ऐसी स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 आकर्षित होती है जो निम्नलिखित शब्दों में है:

"इसमें इसके पूर्व अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश, परिवाद, समन, वारंट, आरोप, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या विचारण के पूर्व या उसके दौरान अन्य कार्यवाहियों में अथवा इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाहियों में किसी भूल, लोप या अनियमितता के कारण अपील या पुनरीक्षण में तब तक प्रतिवर्तित या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि ऐसी भूल, लोप या अनियमितता के कारण वास्तव में न्याय की विफलता नहीं हुई है।"

xxx xxx xxx xxx

"तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि विचारण के दौरान न्यायालय द्वारा अन्वेषण की अवैधता की पूरी तरह से अनदेखी की जानी चाहिए। जब ऐसे किसी आज्ञापक उपबंध के उल्लंघन की बात पर्याप्त रूप से पूर्वतर प्रक्रम पर न्यायालय के संज्ञान में लाई जाती है, तो न्यायालय, प्रसंज्ञान से इनकार न करते हुए, अवैधता को दूर करने और त्रुटि को सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा, और इसके लिए वह ऐसे पुनरन्वेषण का आदेश देगा जैसा कि किसी व्यक्तिगत मामले की परिस्थितियाँ मांगें। जैसा कि धारा 202 से प्रतीत होता है, ऐसा मार्ग संहिता की योजना के चिंतन से पूरी तरह बाहर नहीं है, जिसके तहत परिवाद पर प्रसंज्ञान लेने वाला दंडाधिकारी पुलिस द्वारा अन्वेषण का आदेश दे सकता है। न ही यह कहा जा सकता है कि ऐसा मार्ग अपनाना विशेष न्यायाधीश की अंतर्निहित शक्तियों के दायरे से बाहर है, जो विचारण की प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए व्यावहारिक रूप से वारंट मामले का विचारण करने वाले दंडाधिकारी की स्थिति में होता है।"

(जोर दिया गया)

विद्वान अधिवक्ता का यह भी तर्क था कि उपरोक्त निर्णय में व्यक्त की गई विधिक स्थिति अपरिवर्तित रही है। इस संबंध में, हमारा ध्यान इस न्यायालय के एक हालिया

निर्णय, भारत संघ बनाम टी. नाथामुनी (2014) 16 एस.सी.सी. 285 की ओर आकर्षित किया गया, जिसमें विचार के लिए तथ्यात्मक मुद्दा उत्पन्न हुआ था:

"13. उत्तरदाता द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में दिए गए कई निर्णयों में अच्छी तरह से दिया गया है। कानून द्वारा अधिकृत नहीं किए गए अधिकारी द्वारा अन्वेषण के मामले को अनियमित माना गया है। निर्विवाद रूप से, दंडाधिकारी के आदेश पर केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के उप-निरीक्षक द्वारा अन्वेषण किया गया था, जिन्होंने अन्वेषण पूरा होने के बाद आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। विचारण के दौरान ही उत्तरदाता द्वारा यह आपत्ति उठाई गई थी कि दंडाधिकारी द्वारा केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के उप-निरीक्षक को अन्वेषण करने की अनुमति देने हेतु पारित आदेश अधिकारिता के बिना है। फलस्वरूप, अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण कानूनन दूषित है। यह काफी विचित्र है कि उत्तरदाता ने ऐसा कोई मामला नहीं बनाया कि उप-निरीक्षक द्वारा किए गए अन्वेषण के कारण गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और न्याय का हनन हुआ है। यह सुस्थापित है कि अन्वेषण की अवैधता तब तक परिणाम को दूषित नहीं करती है जब तक कि उसके कारण न्याय का हनन न हुआ हो।"

(जोर दिया गया)

इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में, एम.सी. सुलकुंते बनाम मैसूर राज्य (1970) 3 एस.सी.सी. 513; मुनि लाल बनाम दिल्ली प्रशासन (1971) 2 एस.सी.सी. 48; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335 और ए.सी. शर्मा बनाम दिल्ली प्रशासन (1973) 1 एससीसी 726 का अवलंबन लेते हुए, निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:

"19. जैसा कि पहले चर्चा की गई है, उच्च न्यायालय ने विशेष न्यायाधीश के आदेश के सार को नज़रअंदाज़ करके गलती की है, जिसमें उप-निरीक्षक को जाँच करने की अनुमति दी गई थी। इसके अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस उप-निरीक्षक द्वारा जाँच के कारण पक्षपात या न्याय की विफलता का कोई मामला नहीं

बनता है, उच्च न्यायालय का आदेश कानूनन मान्य नहीं हो सकता। उपरोक्त कारणों से, ये अपीलें स्वीकार की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है। संबंधित न्यायालय अब अत्यंत शीघ्रता से कार्य करेगा।"

(जोर दिया गया)

23. अपीलकर्ता-बिहार राज्य की ओर से प्रस्तुत किए गए तर्क पर विचारपूर्वक ध्यान देने के पश्चात, हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा घोषित विधिक स्थिति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 में निहित अवधारणा के पूर्णतः अनुरूप और सामंजस्य में है। यह स्थिति होने के कारण, हमें यह धारण करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित दूसरा निर्धारण—इस सीमा तक कि 31.03.1995 के बाद और (09.08.2008 को) दिनांक 03.06.2002 की अधिसूचना जारी होने से पहले पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण दूषित माना जाएगा—को अनिवार्य रूप से अपास्त किया जाना चाहिए। हमारे विचार में, उपरोक्त निष्कर्ष केवल तभी दिया जा सकता था यदि संबंधित न्यायालय अपनी यह संतुष्टि व्यक्त करता कि एक अधीनस्थ पुलिस अधिकारी/पदाधिकारी, जिसके पास मामले के अन्वेषण का कोई प्राधिकार नहीं था, द्वारा किए गए अन्वेषण के कारण अभियुक्त के प्रति प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था, जिससे न्याय का हनन हुआ। चूंकि ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है, और चूंकि इस न्यायालय के समक्ष भी यह स्थापित नहीं किया गया है कि अभियुक्त को ऐसा कोई प्रतिकूल प्रभाव सहना पड़ा था, इसलिए हमारे लिए उच्च न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष को बनाए रखना संभव नहीं है। तदनुसार, इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

24. पूर्ववर्ती कंडिका में दर्ज दूसरे प्रस्ताव के संदर्भ में अपने निष्कर्ष दर्ज करने के बाद, हमारे लिए राज्य सरकार की ओर से प्रचारित मुद्दे पर विचार करना आवश्यक है। उसमें, जहाँ तक वर्तमान मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है, अभियुक्तों द्वारा ऐसा प्रदर्शन निरर्थक होगा, क्योंकि हमारे द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति

अधिनियम' की धारा 9 के तहत राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को बरकरार रखने के बाद, "अब" एक वैध और विधिक अन्वेषण पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा भी किया जा सकता है। और इस प्रकार, उन मामलों में भी जहाँ वर्तमान समय में नए अन्वेषण का आदेश दिया जाता है, उस अधिकारी/पदाधिकारी (निरीक्षक, उप-निरीक्षक, सहायक उप-निरीक्षक) को, जिसने मूल अन्वेषण किया था, अन्वेषण शक्ति से युक्त माना जाना होगा। चूंकि अब, 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' के तहत अधिकृत अन्वेषण अधिकारियों में वे अधिकारी भी शामिल होंगे जिन्हें राज्य सरकार द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम' की धारा 9 के तहत निहित शक्ति के प्रयोग में अधिसूचित किया गया है। अतः विचाराधीन मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में किसी भी पक्ष द्वारा पुनरन्वेषण की मांग करते हुए इस तत्काल मुद्दे को उठाने से कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा।

25. तदनुसार, अपीलकर्ता-अभियुक्त द्वारा दायर अपील एतद्द्वारा खारिज की जाती है, और बिहार राज्य द्वारा दायर अपीलें उपर्युक्त सीमा तक एतद्द्वारा स्वीकार की जाती हैं।

अपीलें निस्तारित की गई।

दिव्या पांडे

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।